



अंधा युग: पौराणिक आख्यान का आधुनिक संदर्भ

मदन दान

अतिथि व्याख्याता, श्री करणी महाविद्यालय, कजोई

Gmail: madandancharan99@gmail

'अंधायुग' काव्य नाटक को देखने-पढ़ने के बाद जो सबसे पहला सवाल में उठता है वह यह कि नाटककार ने एक पौराणिक कथा को अपने तरीके से फिर से लिखने की कोशिश तो नहीं की है? इसका उत्तर खोजते हैं तो पाते हैं कि, 'महाभारत' की कथा तो यहाँ है ही नहीं। 'महाभारत' की पृष्ठभूमि अवश्य है पर पृष्ठभूमि अपना एक आभास भर बनाए रखती है औ उस पृष्ठभूमि के प्रसंग में कुछ गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं जिनका उत्तर हमें (और संपूर्ण मानव जाति को) अपने भीतर से तलाश करना है और पूरी ईमानदारी से तलाश करना है। 'महाभारत' का यह प्रसंग आत्मनिरीक्षण की गंभीर ज़रूरत पर बल देता है क्योंकि आज की स्थितियों 'महाभारत' से कम विस्फोटक या विध्वंसक नहीं है। तो क्या अपनी या विवेकहीनता के कारण हम आज भी उसी द्वापर की तरह संपूर्ण मानव जाति को अंधे गह्वर में धकेल दें, या धकेले जाने में दूसरों की मदद करें, या चुप रह कर के लोगो का हौसला बढ़ाएँ और खुद भी अंधेरे में खो जाएँ। जाहिर है यह 'महाभारत' के प्राख्यान का पुनसृजन भर नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाँद के विश्व को एक दृष्टांत के बहाने दी गयी चेतावनी है कि तीसरे विश्व युद्ध के बाद शायद महाभारत के पुराख्यान को दुहरानेवाला या फिर से उसे सुनने-सोचने वाला भी कोई शेष न बचेगा अगर समय रहते 'धर्म' एवं 'विवेक' का मतलब नहीं सम लिया जाता, अपने भीतर के गहरे अंधेरे में छिपे हम अपने ही पाप की, आदिम बर्बर पशु मानव की, शनाख्त नहीं कर लेते और उसे काबू में नहीं कर लेते।

'अंधायुग' काव्य नाटक के वस्तु विधान की जिस मूल धूरी की चर्चा हमने की उससे यह स्पष्ट है कि यह नाटक पौराणिक आख्यान का पुनसृजन भर नहीं है। इसकी ध्वनियों कई और भी हैं। यह नाटक एक ओर जहाँ समन्वय के कई आयामों का संकेत करता है यथा आस्था और अनास्था, सत् और असत् आदर्श और यथार्थ, भाव और कला, काव्यत्व और दृश्यत्व आदि, वहीं दूसरी ओर एक व्यापक जीवन सत्य का उद्घाटन भी करता है कि आशा, सौंदर्य, उन्नति, आस्था, क्षमा, निर्माण आदि शुभत्व के मुकाबले कंठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता, अंधापन भी जीवन और जगत का उतना ही कड़वा सच है जिनसे घबराने और भागने के बजाय जिनका मुस्तैदी से सामना करना ही जीवंतता है। अगर जीवन

में शुभत्व कहीं एक बड़ी सच्चाई है तो उससे कम बड़ी सच्चाई अशुभत्व नहीं। सच का सामना हर आदमी को करना पड़ता है फिर अशुभ की उपेक्षा क्यों, उससे भागना क्यों। उनसे जूझने, उनका सामना करने और उन पर विजय पाना एक मनुष्य होने के नाते हर व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। खतरनाक बाहरी कुरूपताएँ और विद्रूपताएँ नहीं। डरना और सामना करना तो हमें अपने भीतर की उन छिपी हुई कुरूपताओं, विद्रूपताओं और अंधतत्वों का करना है जिनकी ओर दूसरों की तो क्या खुद हमारी अपनी नज़र भी कम ही जा पाती है। सक्षेप में धर्मवीर भारती यही बात कहते हैं जब वे लिखते हैं कि:

“पर शेष अधिकतर हैं अंधे पथ भ्रष्ट, आत्महारा, विगलित अंतर की अंध गुफाओं के वासी यह कथा उन्हीं अंधों की है या कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से।”

नाटककार के इन शब्दों को अधिक स्पष्ट करते हुए हम 'ऐसे भी कह सकते हैं कि 'अंधायुग' अंधों की कथा है अथवा कहें तो अंधों के बहाने ज्योति की कथा है। वास्तविकता यह है कि अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं है और प्रकाश के बिना अंधेरा नहीं। चूँकि प्रकाश है इसलिए अंधकार है अथवा अंधकार का अस्तित्व है इसलिए प्रकाश भी है। जिन पर अंधकार हावी है, प्रकाश दबा हुआ है, वे महाभारत को पात्रों की तरह अंधे हैं अथवा अपनी-अपनी अंध गुफाओं के वासी हैं, अंधकार में जीते हैं, अतः अशुभ, अमंगल, कुरूपता, विद्रूपता, कुण्ठा, सत्रांस, पीड़ा, विडंबना और वेदना में जीते हैं। कमोबेश 'अंधायुग' के प्रायः सभी पात्र चाहे उनकाबाहरी आभामण्डल शुभत्व मंडित ही क्यों न हो, भीतर-भीतर अपने अंधकार को जी और भोग रहे होते हैं। भीतरी अंधकार और बाहरी ज्योति के बीच समन्वय नहीं कर पाते हैं। एक क्षण के लिए एक द्वापर के लिए, अशुभ अंधकार जीत जाता है और व्याध के बाण से शुभ प्रभु मर जाते हैं।

आह! वह सुनता नहीं ज्योति बूझ रही है वहाँ, और जिस क्षण प्रभु ने प्रस्थान किया द्वापर युग बीत गया उस क्षण प्रभुहीन धरा पर आस्थाहत कलियुग ने रखा प्रथम चरण अंतर की अंध गुफाओं का अंधकार हमारे जीवन में जब-जब जीतता है, शुभ की, प्रभु की मृत्यु होती है, द्वापर का अंत और कलियुग का प्रारंभ होता है।

पाप की अंधकारपूर्ण छाया में व्यक्ति अपना शेष जीवन उन्हीं अंध गुफाओं में भटकता हुआ काटता है। आज भी हर क्षण कहीं-न-कहीं किसी न किसी व्यक्ति के प्रभु की (मूल्यों की) हत्या हो रही है, उसके जीवन पर अंधकार का कलियुग हावी हो रहा है। अंधकार और प्रकाश का यह संघर्ष सनातन है। अंधकार और प्रकाश की संघर्ष गाथा, थोड़ी देर के लिए हम निराश करती हैं कि क्या हमेशा अंधेरा ही जीतेगा और प्रभु क्या सदैव मरते रहेंगे, शुभ क्या सदैव पराजित होता रहेगा। मंगल, शुभ, शाश्वत और चिरंतन के प्रति हमारी आस्थाएँ और हमारे विश्वास इसी प्रकार नित्य खण्डित होते रहेंगे। तो हम अंधकार को ही चरम सत्य मान लें, उसी के प्रति आस्थावान और विश्वासी बनें?

सच कभी मरता नहीं। असंख्य तिथियाँ बीत गयी जब अंधकार ने सूरज को यस लिया, पृथ्वी पर अंधकार का साम्राज्य स्थापित हो गया। परंतु आखिरकार अंधेरा छूटता है और हर रोज नये प्रभु के रूप में शुभ, मंगल, शाश्वत, सत्य और सूर्य का उदय होता है। मापी से पापी व्यक्ति के जीवन में भी वह क्षण आता है जब उसके अंतर की अंध गुफाओं के समस्त अंधकार को भेदकर ग्लानि और पश्चाताप के शुभ भाव जगते हैं और अपने समस्त पापों को वह प्रभु को अर्पित कर उनके चरणों में गति पाता है, अपने भीतर एक सर्वथा नवीन व्यक्ति के जन्म को अनुभव करता है। 'अंधायुग' में कृष्ण ने वृद्ध ज्योतिषी को प्रेत लोक की अंध योनि से मुक्ति दिलायी और नवजीवन दिया तथा अश्वत्थामा के पाप को स्वयं धारण किया, क्योंकि 'अंधायुग पैठ गया था मेरी (अश्वत्थामा, की) नस नस में वृद्ध की वाणी में कृष्ण बोलते हैं कि उनकी मृत्यु प्रभु की मृत्यु नहीं मात्र 'रूपांतर' है। प्रभु अब दूसरे रूपों में मिलेंगे, उन रूपों में जिन्हें उन्होंने अपने प्रभुत्व का दायित्व सौंपा है मेरा दायित्व वह स्थित रहेंगा / हर मानव-मन के उस वृत्त में जिसके सहारे वह सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए नूतन निर्माण करेगा पिछले विध्वंसों पर / कृष्ण ने आज के कंधों पर अतीत की भूल सुधारों का दायित्व सौंप दिया है।

सृजन और विनाश बनाम प्रकाश और अंधकार जो गलती हमसे हो गयी है उसे फिर-फिर हम दुहराएँ नहीं, उससे सीखें और जानें कि हमें कैसे जीना है। हमारे सामने जो युद्धों के अवशेष पड़े हैं, हमें बराबर याद दिलाते रहेंगे, हिरोशिमा और नागासाकी की। हमने फिर से जीना सीखा है, आगे बढ़े हैं, पर किधरा क्या पुनर्विनाश की ओर नहीं। निर्माण ने तो सिद्ध किया कि प्रभु जीवित है पर क्या आगे फिर कभी द्वापर नहीं आएगा? यह भी एक वैसा ही गंभीर प्रश्न है जो यह नाटक उठाता है। युद्ध के विध्वंसों के अवशेष पर नयी सृष्टि रचने का आह्वान भी इस नाटक का मुख्य स्वर है। कारण छोटे हो या बड़े, हर पक्ष अपने को किसी नैतिक कारण से सम्बद्ध बताकर अपने संघर्ष को धर्मसम्मत, विवेकपूर्ण और न्याय का पक्ष साबित करता है जबकि वस्तुतः दोनों पक्षों में से धर्म कहीं भी नहीं होता। धर्म की दुहाई भर दी जाती है। विवेक कहीं नहीं होता, सब के सब कहीं गहरे अपने अंधकार से ग्रस्त होते हैं। वस्तुतः विजय किसी की नहीं होती, सभी हारते हैं और मौत केवल मनुष्यता की होती है। इतनी बड़ी हानि सहने के बाद आदमी फिर से युद्धावशेषों पर नवनिर्माण में प्रवृत्त होता है। क्योंकि प्रभु सृष्टि में ही बसते हैं। पाप कौरवों ने कम नहीं किए, भूले पाण्डवों ने भी कम नहीं कीं। दोनों के युद्ध में शरीर से अधिक मानवीय मूल्य हताहत हुए। जिस राज-पाट के लिए युद्ध हुआ, जिसे कौरव अपने पास बनाए रखना चाहते थे और पांडव उस पर अपना नैतिक अधिकार समझ कर पाना चाहते थे, उस राज सुख से अंततः दोनों ही वंचित हुए क्योंकि सभी अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित थे। हिंसा और प्रतिहिंसा, शोषण और प्रतिशोध, अहंकार और दंभ के संघर्ष में अंततः सबकी पराजय निश्चित थी।

नाटककार कहता है कौरव-पाण्डव दोनों पक्षों में धर्म कहीं नहीं था इसलिए दोनों ही हारे। सदा सच बोलने वाले युधिष्ठिर ने भी 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कंजरो वा' कहकर वस्तुतः द्रोण की हत्या के षड्यंत्र में अपनी भागीदारी ही साबित की थी क्योंकि उन्हें उस छल की जानकारी थी कि 'नरो वा कंजरो' कृष्ण की शंखध्वनि में सुना ही नहीं जा सकेगा। इस छल में सच बोलने का एक नाटक भर युधिष्ठिर ने किया था। जीवन भर सत्य बोलने वाले युधिष्ठिर के इस आधे सच ने अश्वत्थामा के भीतर जिस प्रतिशोध और प्रतिहिंसा को जन्म दिया 'अंधायुग' नाटक उसी के परिणामों का दस्तावेज़ है। सदा झूठ बोलने वाले या व्यक्तिगत ज़रूरतों से झूठ बोलने वाले, या कभी-कभी शौक से।

मजा लेने के अंदाज में बोले जाने वाले झूठ की प्रतिक्रिया इतनी भयंकर नहीं हो सकती थी जितनी भयंकर प्रतिक्रिया युधिष्ठिर द्वारा बोले गए एकमात्र अर्द्धसत्य की हुई। 'अंधायुग' की पूरी वस्तु योजना में से अश्वत्थामा को निकाल कर देख लीजिए कि जो शेष बचता है वह कितना प्रभावशाली है। या फिर अश्वत्थामा तो रहें लेकिन उसके भीतर से छल के द्वारा या अर्द्धसत्य की आड़ में की गयी पिता की 'हत्या' का प्रतिशोध, उसकी प्रतिहिंसा की भावना को ही निकाल कर देखिए कि तब क्या अश्वत्थामा वही होता जैसा नाटक में है, या यह कि तब क्या 'महाभारत' का वह अंत अथवा प्रभु की वैसी 'हत्या' भी हो पाती? ध्यान से देखें तो पूरे महाभारत में दोनों ही पक्षों द्वारा अपनाए गए छल-प्रपंच, षड्यंत्र, अधर्म, पापकर्मादि के मुकाबले में युधिष्ठिर का एकमात्र अर्द्धसत्य सब पर भारी पड़ता है जिसने पूरे द्वापर की दिशा बदल दी। अनेक संपूर्ण झूठों के मुकाबले में सत्य की आड़ में बोला गया एक मात्र आधा सच (या आधा झूठ) सबसे ज्यादा खतरनाक साबित हुआ। युधिष्ठिर के इस एकमात्र अर्द्धसत्य अर्थात् आधे झूठ ने मानो उनके और पूरे युग के संपूर्ण सत्य के प्रखर सूर्य को ग्रहण लगा दिया। सच के प्रकाश को असत्य के अंधकार ने निगल लिया। प्रकाश की किरणों जिन विषाणुओं को नष्ट करने में समर्थ हैं उन्हीं ने जैसे सच को खा लिया। अंधकार और प्रकाश का यह संघर्ष सब दिन रहा है और सब दिन रहेगा। समस्त संघर्षों और विनाशों के बावजूद आदमी और आदमियत बची रही है, रहेगी।

ऐसा स्वीकार किया जाता है कि महान् साहित्यकार युगद्रष्टा और युगस्रष्टा होता है। युगद्रष्टा इसलिए कि अपने वर्तमान को देखकर वह भविष्य का फलितार्थ कहता है और युगस्रष्टा इसलिए कि अपने शब्दों से वह अपने समय को न केवल वाणी देता है अपितु दिशा भी। जिस समय 'अंधायुग' की रचना की गयी उसके कुछ ही समय पूर्व द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ था और पूरा विश्व समाजवादी एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रतिनिधि शक्तियों रूस एवं अमेरिका के दो ध्रुवान्तों में बंट गया था। विश्वयुद्ध के ध्वंसावशेष पर नव-निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी और समय ने एक बार फिर से यह साबित कर दिया था कि मानवीय जिजीविषा अमर है, वह कभी नहीं मरती, और राख में फूटती हुई नयी कोपलों की तरह हर बार ध्वंस के अंबार पर नयी फसल के अंकुर उग।

नाटक के अनुसार, आधुनिक युग ने एक दूसरी बात यह सिद्ध की कि व्यवस्था चाहे पूंजीवादी हों या साम्यवादी, दोनों की सोच की दिशा एक है, दोनों की वैचारिक श्री एक है अर्थात् राजसत्ता पर निरंकुश अधिकार। विश्व के दो खेमों में बँट जाने की सतही तौर पर कौरव-पाण्डवों के मतभेद और संघर्ष में देखा जा सकता है पर उस झगड़े की जड़ भी 'राजसत्ता' है और द्वितीय विश्वयुद्ध की जड़ में भी 'राजसत्ता' का विस्तार ही है। दुर्योधन पाण्डवों को सुई की नोंक के बराबर हिस्सा देने के लिए तैयार न हुआ उसने पाण्डवों के अधिकार का अपहरण कर उन्हें निष्कासित कर दिया। ऐसी ही कार्रवाई हिटलर ने भी की थी। उसकी नज़र में यह पृथ्वी आर्यों की थी और आर्येतर या यहूदी न केवल दूसरे दर्जे के नागरिक थे बल्कि उनका स्वत्व अपहरण योग्य था। द्वितीय विश्वयुद्ध में लाखों-लाख यहूदियों, निरपराध नागरिकों को अपने प्राण गँवाने पड़े और महाभारत युद्ध की तरह लाखों-लाख सैनिकों का संहार हुआ। हिटलर की फासवादी राजनीति के विपरीत लोकतांत्रिक राजनीति जनता के हितों पर आधारित थी, परंतु स्वयं ये व्यवस्थाएँ भी अपने आपको अधिकारों के दुरुपयोग से नहीं बचाए रख सकीं। समाजवादी और पूंजीवादी शिविर में श्रेष्ठता की होड़ ने शस्त्रों का अंबार खड़ा कर दिया। दोनों अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करने में जुट गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इन दोनों शिविरों में जो तनाव और संघर्ष चला, उसने युद्ध का माहौल बना दिया जिसे शीतयुद्ध के नाम से जाना जाता है। 'अंधायुग' के रचनाकाल तक ये सारी स्थितियों लगभग स्पष्ट हो चुकी थी।

इस अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में एक नयी इकाई के रूप में भारत का उदय हुआ। भारत लगभग दो सौ साल की औपनिवेशिक दासता से अभी मुक्त हुआ ही था। इंग्लैंड सहित पूंजीवादी देश अमरीका के नेतृत्व में भारत जैसे देशों को अपने राजनीतिक-आर्थिक नियंत्रण में रखना चाहते थे, जबकि समाजवादी देशों की प्रगति और बिना शर्त सहयोग का आश्वासन उसे समाजवादी शिविर की ओर खींच रहा था। भारत इन दो ध्रुवों के बीच खड़ा अपना मार्ग तय नहीं कर पा रहा था। ऐसी ही विकट स्थिति में लेखक, कलाकार भी अपने-अपने ढंग से अपना मत प्रकट कर रहे थे। धर्मवीर भारती जो प्रगतिशीलता और साम्यवाद को शंका की दृष्टि से देखते थे और जो पूंजीवाद और समाजवाद में कोई अंतर नहीं पाते थे, 'उनका स्पष्ट मानना था कि दोनों रास्ते गलत हैं और भारत के लिए वह सही मार्ग नहीं है। विश्व में शीतयुद्ध की स्थिति, युद्ध तनाव, मूल्यहीनता आदि के लिए उन्हें दोनों बराबर जिम्मेदार नज़र आते थे।

'महाभारत' के विषय में आपने पहले से यह सुन रखा होगा कि महाभारत में जो नहीं है वह भारतवर्ष में नहीं है। राजनीतिक पतनशीलता और मूल्यों की गिरावट जो हम आज देखते हैं, अगर आप 'अंधायुग' के महाभारतीय परिवेश से उसकी समता को रेखांकित करने की हल्की सी भी कोशिश करें तो यह समझने में बाधा नहीं रह जाएगी कि कमोबेश यही स्थिति उस समय भी थी। राजनीतिक पतनशीलता

की पराकाष्ठा वहां थी जहाँ संपूर्ण राजसी शक्तियों कौरवों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए प्रयोग में लाई जा रही थी। राजनीति में व्यक्तिवाद के बढ़ते प्रभाव ने मूल्यों को तब भी नष्ट किया था और आज की तारीख में भी कर रहा है। विवेचन का विषय यह नहीं रह गया कि सत्य किधर है या यह कि धर्म किधर है। 'माइट इज राइट' 'अंधायुग' जब लिखा गया तब भी था, और आज भी है। कुछ तो नहीं बदला है: दुर्योधन और दुःशासन तब भी थे आज भी हैं।

'अंधायुग' में लेखक ने ऐसी राजनीतिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है, जहाँ सत्य किसी ओर नहीं है, न किसी ओर धर्म है। संपूर्ण व्यवस्था मूल्यहीनता और निहित स्वार्थों की दासी हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति दिग्भ्रमित है कि वह किधर जाए, क्या करें, किस पर भरोसा करे और इस दुष्चक्र से कैसे निकले। लेखक इस अनास्था और व्यर्थथाबोध से इस हद तक आंतकित है कि वह पूरे युग को 'अंधायुग' की संज्ञा देता है। 'अंधायुग' में सामूहिक संघर्ष, आदर्श तथा नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। वे इस बात पर बल देते नजर आते हैं कि हमारी बाह्य आस्था हमें सही दिशा नहीं दे सकती। 'अंधायुग' का प्रत्येक पात्र आस्थाहीन है। किसी को भी भविष्य पर भरोसा नहीं है। मनुष्य का भविष्य उन्हें मृत नज़र आता है। केवल आत्महत्या ही उन्हें दर्शन, धर्म, कला, संस्कृति तथा शासन व्यवस्था में व्यक्त होती नज़र आती है:

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित

इस पूरी संस्कृति में

दर्शन में, धर्म में, कलाओं में,

शासन व्यवस्था में

आत्महत्या होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।

आज जब समाजवादी शिविर समाप्त हो गया है। प्रगतिशील ताकतें कमजोर पड़ गई हैं, 'अंधायुग' की यह राजनीतिक दृष्टि अपनी सीमा का भी एहसास कराती है। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के वर्चस्व के बावजूद न तो युद्ध का भय समाप्त हुआ है और न ही मानवजाति के नैतिक संकट की समाप्ति हुई है। प्रतीत होता है जैसे एक अंधेयुग से दूसरे अंधेयुग में प्रवेश कर रहे हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर हम इसे देख सकते हैं।

विशेष टिप्पणी :

व्यक्ति चाहे सत्य के साथ रहे अथवा असत्य के साथ दोनों का अंत पीडादायक ही होता है। सत्य के पक्षकार ईसा मसीह को क्रॉस पर लटकाया गया। सुकरात को व्यक्ति शिक्षा एवं मानव सदाचार पर बल देने के परिणाम स्वरूप लोगों ने उस पर बच्चों को बिगाड़ने और नास्तिक होने का दोषारोपण किया और परिणाम स्वरूप उसे जहर देकर मारने का दंड दिया गया। महात्मा गांधी को सत्य और



अहिंसा के मार्ग को अपनाने के कारण उन्हें गोली मारी जाती है। इन सभी घटनाओं से प्रतीत होता है कि सत्य ही पीड़ा है और इस पीड़ा को संजय ने व्यक्त किया है-

'मत छोड़ो मुझे
कर दो बध
जा कर अर्थों से
सत्य कहने की
मर्मांतक पीड़ा है जो'

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. e-gyankosh, 'अंधायुग' में चरित्र सृष्टि
2. अपनी माटी, 'अंधायुग' और भारतीय मूल्य बोध, राजेंद्र कुमार सिंघवी
3. Blogger.com, अंधा युग की कथावस्तु का आधुनिक संदर्भ में विवेचन